कहानी

लिजा माय डार्लिंग

मार्टिन जॉन

अगर भोजन परोसने में थोड़ी-सी देर हो जाए तो लिजा शोर मचाकर आसमान सर पर उठा लेती है . इस मामले में उसे ज़रा भी सब्र नहीं . समय पर उसे खाना न मिले तो ऐसी ही हरक़त करती है . इंतज़ार उसके वश की बात नहीं . ज़ल्दी- ज़ल्दी उसे भोजन परोस कर किचन में दाख़िल होने वाली ही थी कि टेबिल पर रखा मोबाइल गुनगुनाने लगा, स्मार्टफोन की स्क्रीन पर बेटा नमूदार था .

बेटे का मुस्कराता हुआ चेहरा आंखों की स्क्रीन पर प्रतिबिंबित होते ही मम्मी का मुखड़ा ताज़ा गुलाब की मानिंद खिल उठा .

वे मांएं कितनी खुशनसीब होती हैं जिनके बेटे-बेटियां अपने इलाके से दूर या देश से बाहर रहते हुए ज़िदगी की आपा-धापी और नौकरी की घोर व्यस्तता के बावजूद रोज नहीं तो कम-से-कम सप्ताह में एक-दो बार अपनी आवाज़ उन्हें सुना देते हैं या चेहरा दिखा देते हैं . वरना अभी तो हालत यह है कि दूर-दराज़ की किसी संस्थानों , खासकर आई .टी कंपनियों में जॉब करने वाले बेटे-बेटियों के माता-पिता या स्वजन उनके चेहरे देखने की बात तो दूर सिर्फ़ आवाज़ सुनने को तरस जाते हैं . सच तो यह है कि पैकजों के मायाजाल में उन्हें फंसाकर इन कंपनियों ने उनके अपने लोगों से दूर कर दिया है . झूठ तो यह भी नहीं हो सकता कि टेक्नो माइन्डेड ये बच्चे पैकजों की मरीचिका को ही अपने जीवन का आख़िरी मक़सद मान बैठते हैं . आगे चलकर वो समय भी आता है जब उनका वहम टूटता है . तब इस तल्ख़ एहसास से रू-ब-रू होना पड़ता है कि पैकजों की 'चाहत' उनके जीवन का असली रस सारा-का-सारा निचोड़ लिया है . आख़िरी वक़्त में कल्पना से ज़्यादा बहुत कुछ पाने के बावजूद सूखे पेड़ की मानिंद ज़िदगी जीने को अभिशप्त हो जाते हैं .

गुड मॉर्निंग मॉम !.....कैसी हैं ?

बेटे का स्वर कानों में पड़ते ही मम्मी को ऐसा लगा जैसे रस घोलने वाले नोटिफिकेशन की सैकड़ों घंटियां एक साथ बज उठीं हों .

वेरी गुड मॉर्निंग बेटू !.....मुझे छोड़ , तू बता कैसे हो ?.... लास्ट वीक से तो न तो तू कॉल किया और न अपना चेहरा दिखाया .

हां मां , इधर ज़रा वर्कलोड था . आज रिलेक्स मूड में हूं .'' वैसे आज संडे भी तो है . यस मॉम .....एंजॉयइंग संडे .

मां , बेटे की बातचीत की आवाज़ बरामदे में बैठी दादीजी के कानों में पड़ते ही उठ खड़ी हुई और अपनी बीमार देह को घसीटते हुए कमरे में दाख़िल होकर मम्मी के पीछे खड़ी हो गई . कई महीने हो गए पोते से बातचीत किये हुए . उसे देखने को बूढ़ी आंखें तरस रही हैं .

नौकरी शुरू करने बाद के कुछ महीनों तक जब भी वह अपनी मम्मी से फोनियाता , दादीजी की तबीयत के बारे में पूछ-ताछ कर लेता . एक-दो बार उसने फ़ोन पर बातचीत भी की . दो सप्ताह पहले जब उसने वीडियो कॉल किया था अपनी मम्मी को , दादीजी बरामदे में बिछे तख़्तापोश पर लेटी हुई थी . घुटनों में इतना तेज दर्द था कि हिम्मत जुटा नहीं पायी मम्मी के कमरे तक पहुंचने तक . दादी का हाल -समाचार पोते ने लिया कि नहीं , इसका पता ही नहीं चला . इधर ,पिछले कई दफ़ा उन्होंने गौर किया कि जब भी उसका कॉल आता मम्मी फ़ोन लेकर छत पर चली जाती . मन भर फोनियाने के बाद नीचे उतरते हुए कहती , आपकी तबीयत के बारे में पूछ रहा था . इसके पहले की दादीजी पोते के बारे में कुछ पूछती, बिना एक पल ठहरे वह आने कमरे में समा जाती . मम्मी की यह हरकत उन्हें संदेह में डाल देती . झूठ बोल कर उनका मन रखने की चाल तो नहीं है ? ऐसा सोच कर वह खुद को धिक्कारती -'ऐसा नहीं है मेरा पोता . ज़रूर हाल-समाचार लेता होगा . पैदा होते ही लगातार तीन महीने तक अपनी मां की गोद में पलने के बजाए मेरी गोद में अठखेलियां करने वाला , बचपन से लेकर युवावस्था तक मेरे ही आंचल में लिपटे रहने वाला मेरा पोता उस जुडाव-लगाव को कैसे भूल सकता है ?' जचकी के बाद मां का टाइफायड से पीड़ित हो जाना उसे स्तनपान के परम सौभाग्य से वंचित ही नहीं किया वरन सद्य प्रसूता जननी की गंध से भी महरूम हो जाना पड़ा था . उस कालखंड में वह दादीजी की ही गंध में रच-बस गया था . नाभि -नाल मां का , देहगंध दादी की . दादी के प्रति उसकी बेपनाह प्यार ही तो था कि मौक़े -बेमौके जब भी मम्मी -पापा के साथ घर से बाहर निकलना होता दादीजी को भी अपने साथ ले चलने की जिद कर बैठता . अंततः जीत उसकी जिद की होती हर बार और वह विजयी भाव से दादीजी का हाथ थामे चल पड़ता .

वह उस समय पांचवीं कक्षा में था . हर साल की तरह इस बार भी स्कूल का सलाना जलसा होने वाला था . पढ़ाई के अतिरिक्त अन्य गतिविधियों - जैसे खेल-कूद , चित्रांकन , गायन आदि में इनाम से नवाजे जाने वाले अव्वल विद्यार्थियों की फ़ेहरिस्त में उसका भी नाम था . इसके अलावा स्कूल के इस जलसे में मंचित होने वाली एक लघु नाटिका में भी उसकी भागीदारी थी . स्कूल के सामान्य नियम के अनुसार ऐसे आयोजनों में विद्यार्थियों के अभिभावकों को ही आमंत्रित किया जाता है .जलसे में मम्मी -पापा का जाना तो तय था ही परन्तु उसकी दिली इच्छा थी कि दादीजी भी उनके साथ आए . उसे पुरस्कृत होते , नाटिका में अभिनय करते दादीजी भी देखे . मम्मी पापा स्कूल के नियमों का हवाला देकर उसे समझाने का प्रयास करते रहे , पर वह कहां मानने वाला . 'दादीजी भी आएगी ' की रट लगाने लगा . बेहद पेशोपश से घिरे पापा को आख़िरकार हेडमास्टर से व्यक्तिगत रूप से मुलाक़ात कर गुजारिश करनी पड़ी थी . बच्चे की जिद और दादीजी के प्रति अतिरिक्त अपनापा के मद्देनजर हेडमास्टर को अनुमति देनी ही पड़ी . दादीजी उम्मीद की एक मजबूत डोर से खींची अली आई थी मम्मी के पीछे . सीने में ममता और स्नेह का समंदर लिए . घुटनों के दर्द के बावजूद आस लगाये खड़ी थी कि वह ज़रूर देखेगा मोबाइल की स्क्रीन पर और अपना प्यार जताएगा . एक बार मन किया कि जोर से चिल्लाकर हैलो कह दे . अपनी दादीजी की आवाज़ सुनकर मुमकिन है वह उनसे मुख़ातिब हो जाए . लेकिन हिम्मत नहीं जुटा पाई . मम्मी की नाराजगी का भरपूर अंदेशा था .

मॉम , लिजा कहां है ?.....आई हैव नॉट सीन हर अ लॉन्ग टाइम .

दादीजी को सहसा यकीन नहीं हुआ . मोबाइल की स्क्रीन पर उनका आधा शरीर दिखने की बावजूद उनके बारे में पूछने के बजाए लिजा की खोज-ख़बर ले रहा है . अपनी दादी की उपस्थिति का आभास उसे क्या नहीं मिला ? या जानबूझकर अनदेखा कर रहा है ? परिवार के उम्रदराज़ व्यक्तियों की नियति क्या ऐसी ही हुआ करती है?

बगल में बैठी है .....अभी दिखाती हूं .

मोबाइल तिरछा हो गया . दादीजी की फोटो वहां से 'मूव' हो गई और उसमें लिजा 'इन्सर्ट' हो गई . अब वे दोनों फेस-टू-फेस थे .

स्क्रीन पर रॉकी का चेहरा देखकर पहले तो लिजा अचकचाई . फिर उसकी आवाज़ कानों में पड़ते ही कूं-कूं करते हुए दुम हिलाकर प्यार का इज़हार करने लगी .

आई मिस यू डार्लिंग ! रॉकी ने लिजा को एक ज़ोरदार फ़्लाइंग किस उछल कर मम्मी से मुख़ातिब हुआ , थोड़ी दुबली दिख रही है लिजा . यस बेटू , शी वाज सफरिंग फ्रॉम डिहाईड्रेशन एंड कॉनफाइंड टू बेड .....अभी भी मेडिसिन दे रही हूं .'

डाइट ठीक ले रही है कि नहीं ?'

हां बेटू .....और जानते हो , जब वह अनहेल्दी फील कर रही थी , बार-बार ड्राइंग रूम में चली जाती थी . वहां तेरी तस्वीर के सामने बैठ कर कूं-कूं किया करती थी . .....अपनी तबीयत खराब होने की खबर तुम तक पहुंचाना चाह रही थी .

सॉरी लिजा डार्लिंग !...हमें पता होता तो कूद-फांद कर आ जाता . सहसा दादीजी को खांसी आ गई . मुंह में आंचल ठूंसकर खांसी के वेग को दबाने की कोशिश तो कर रही थी , एक उम्मीद -सी जगी भी थी कि खांसी की आवाज़ से मुमकिन है रॉकी को उनकी मौजूदगी का आभास हो जाएगा .खांसी उठती रही . वह दबाती रही . इतना भी नहीं दबा रही थी कि रॉकी तक खांसने की आवाज़ न पहुंचे . मां -बेटे में खूब बातें होती रहीं - लिजा की सेहत के बारे में , उसके खान-पान, उसकी प्यारी-प्यारी हरकतों , उसका गुस्सा , उसकी नाराज़गी के बारे में लिजा भी कूं-कूं करते हुए बातचीत में शरीक होने का आभास दिलाती रही .

अच्छा मॉम , एक बात पूछना भूल जा रहा हूं . लिजा के लिए जो विटामिन कुरियर से भिजवाया था उसे दे रही हैं कि नहीं ?

वीकली डोज था न . ड़ाइट के साथ दे देती हूं . शुरू में तो नाक -भौं सिकोड़ती थी . अब आदत पड़ गई है .

अच्छा मॉम , फ़ोन रखता हूं . एक बार लिजा को दिखा दो .

लिजा को देखकर रॉकी ने फिर एक बार फ़्लाइंग किस उछल कर गुड नाइट कहा और फ़ोन डिस्कनेक्ट कर दिया .

क्लास by बड़े भाई

थोड़ा घुमक्कड़ बनें

संदीप द्विवेदी
कवि/प्रेरक वक्ता/स्किल ट्रेनर

बचपन में मेरी मम्मी ने जिसे पानी बताया था, कहाँ पता था कि कुछ किताबें उसे HwO भी कहती हैं .

छोटे भाई, हमारे सोच विचार का दायरा उतना ही बड़ा होता है जितना हमने देखा ,सुना और पढ़ा होता है . वही हमारे लिए सत्य होता है लेकिन जो हमारे लिए सत्य है ज़रूरी नहीं है कि वो किसी और के लिए भी हो क्योंकि उसने जो देखा सुना और पढ़ा है, उस हिसाब में आपका सत्य, असत्य भी हो सकता है .

छोटा बच्चा जिस आग के सुनहरे रंग को देखकर उसको पकड़ने के लिए दौड़ता है तो आप उसे रोकते हैं क्योंकि आप आग के जला देने का गुण जानते हैं लेकिन बच्चा उसी की ओर बार बार दौड़ता है क्योंकि वो यह नहीं जानता . फिर वही छोटा बच्चा जब धीरे धीरे आग से परिचित हो जाता है तो उसकी आग को कोई खेलने की चीज मानने की धारणा बदल जाती है .

छोटे भाई, कहना ये है कि थोड़ा घुमक्कड़ बनिए . दुनिया देखिए, लोगों से मिलिए, इससे आप अहसास कर पाएंगे कि जिसे आप जो मानते थे वो वैसा नहीं था . वो कुछ और था . आपका एक अलग नज़रिया विकसित होगा . आज भी हमारी कितनी ही चीजों के लिए धारणाएं बच्चे जैसी ही हैं और ऐसा इसलिए होता है कि हम अपने को सीमित कर लेते हैं . वहीं तक अपनी दुनिया मान लेते हैं . उसी को बड़ा या छोटा मान लेते हैं जबकि यह दोनों ही बातें ग़लत हो सकती हैं . बारिश के कारण खेत की किसी मेड़ का टूट जाना आपके लिए सबसे नुकसान देह घटना हो सकती है अगर आपने किसी पुल का टूटना नहीं देखा है .

छोटे भाई, जब मैं पहली बार गाँव से शहर आया था तो अलग सोच थी पर अब अलग है . हम जितना घूमते हैं, दुनिया देखते हैं, लोगों से मिलते हैं तो इसका हम पर बहुत प्रभाव पड़ता है .

कभी अपने उस दोस्त से मिलिएगा जो बचपन से कॉलेज तक आपके साथ पढ़ा हो या आप दोनों एक ही मोहल्ले से हों और अब वो कहीं बाहर रहता हो, आप उसके व्यवहार और विचार में साफ अंतर देख पाएंगे . क्या पता पहले वो मक्खीचूस दोस्त रहा हो और अब दरिया दिल हो गया हो . . ह ह ह .

तो बस यही कहना चाहता हूँ कि कुएं का मेंढक बनने से खुद को बचाएं . जब भी मौका मिले घूमिए, मौका नहीं मिलता तो मौका बनाइये . देखिए कि यकीन मानिए, आप स्वयं को नया होता पाएंगे .

मोटी बात यह है कि ; मेरी दादी को सपने में कभी शहर नहीं दिखता . उनको बस, गाँव दिखता है क्योंकि उनका जीवन गाँव में ही बीता है .

छोटे भाई, आप मेरी दादी जैसा न बनें, आपकी एक लंबी पारी बची है . अपने को असीमित करें . थोड़ा घुमक्कड़ बनें . खूब सारी अलग अलग जगहें घूमें, अलग अलग लोगों से मिलें, किसी वैज्ञानिक से मिलें, किसी साधु से मिलें, किसी किसान से मिलें, किसी नौकरीपेशे वाले से मिलें, किसी कलाकार से मिलें, किसी नेता से मिलें, बस मिलते रहें . . मिलते रहें . . विश्वास करिए एक दिन इस यात्रा में आप आपके भीतर की अनंत क्षमताओं से मिल जाएंगे . .

पुस्तक चर्चा

शहरों को देखना समझना सिखाती एक जरूरी किताब

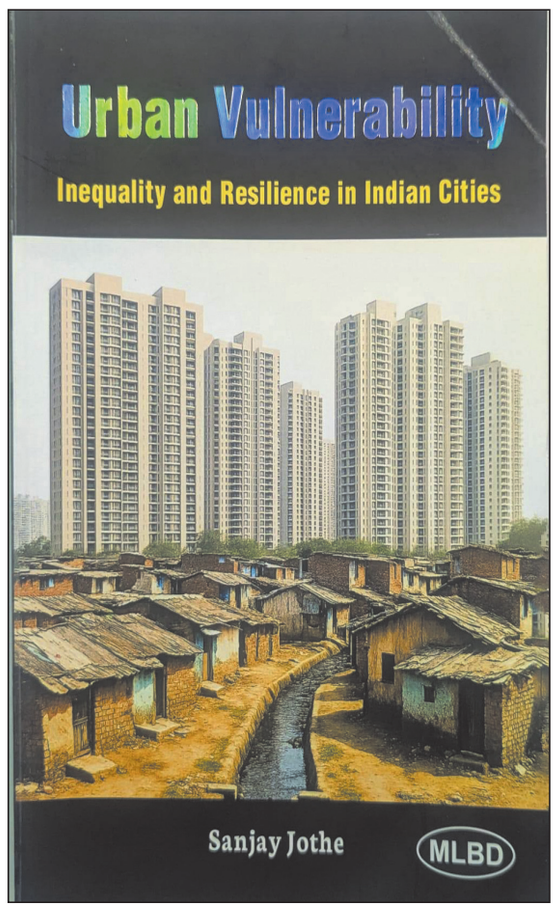

डॉ. दिलीप सिंह

शहर को हम अक्सर ऊपर से देखते हैं. ऊँची इमारतों, चौड़ी सड़कों, निवेश और विकास की भाषा के ज़रिये. ऊपर से देखने पर शहर व्यवस्थित लगता है, सफल और चमकदार.

लेकिन ये किताब शहर को नीचे से देखती है. वहाँ से, जहाँ सड़क की धूल साँस में भरती है, जहाँ घर अस्थायी होते हैं और भविष्य हमेशा टलता रहता है. यह किताब पूछती है कि शहर किसके लिए सुरक्षित है, और किसके लिए हमेशा अस्थिर ?

यह सवाल किसी नारे की तरह नहीं आता. यह झुग्गियों की गलियों से, मज़दूरों के शरीर से और महिलाओं के रोज़मर्रा के अनुभवों से धीरे-धीरे उभरता है. शहर यहाँ किसी अमूर्त संरचना की तरह नहीं, बल्कि जीए गए जीवन की तरह सामने आता है. शहर और श्रम के रिश्ते को समझने की कोशिश कोई नई नहीं है. कार्ल मार्क्स ने औद्योगिक शहर को श्रम और पूंजी के टकराव की जगह माना था. उनके लिए शहर वह जगह था जहाँ मज़दूर अपनी मेहनत बेचता है और मुनाफ़ा उससे अलग हो जाता है. Urban Vulnerability इस विचार को आज के भारतीय शहरों में जीते हुए दिखाती है. भोपाल की सुगना बाई जब कहती है पसीना हम बहाते हैं, कमाई कोई और खाता है इन शब्दों में वे उसी ऐतिहासिक सच्चाई को बयान करती हैं.

लेकिन शहर केवल शोषण की जगह नहीं, वह नियमों और वैधता की भी जगह है. मैक्स वेबर ने शहर को सत्ता, कानून और नौकरशाही के ढाँचे के रूप में देखा था. इस किताब में यह साफ़ दिखता है कि झुग्गियों में रहने वाले लोग शहर के भीतर होते हुए भी नागरिक नहीं माने जाते. उनके पास काम है, लेकिन अधिकार नहीं. घर है, लेकिन वैध पता नहीं. यह असुरक्षा किसी दुर्घटना का नतीजा नहीं, बल्कि नीतियों और नियमों की देन है.

शहर का एक मानसिक चेहरा भी है. जॉर्ज सीमेल ने लिखा था कि शहर भीड़ में अकेलापन पैदा करता है. इस किताब में यह अकेलापन हर जगह मौजूद है. ख़ासकर महिलाओं के अनुभवों में. सुबह से रात तक काम में डूबी महिलाएँ, जिनका श्रम शहर को चलाता है, लेकिन जिन्हें शहर कभी अपनाता नहीं. यह अकेलापन केवल भावनात्मक नहीं, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक है.

भारतीय शहरों की कहानी यूरोप से अलग है. यहाँ औद्योगीकरण मज़दूरों के लिए सुरक्षा और सुविधाएँ लेकर नहीं आया. यहाँ मज़दूर को काम मिला, लेकिन रहने की ज़िम्मेदारी उसी पर छोड़ दी गई. झुग्गियाँ इसी इतिहास की उपज हैं. समकालीन भारतीय शहरी अध्ययन में गौतम भान बार-बार कहते हैं कि झुग्गियाँ शहर की विफलता नहीं, बल्कि उसकी योजनाओं का परिणाम हैं. यह किताब उसी बात को ज़मीन से उठाकर दिखाती है.

इंदौर के देवास नाका पर खड़े बंसीलाल कहते हैं कारों के लिए चौड़ी सड़क है, हमारे लिए पैदल चलने की भी जगह नहीं, उनकी ये बात शहर के पूरे भूगोल को एक पंक्ति में खोल देती है. यह केवल सड़क की बात नहीं है, यह संसाधनों के बँटवारे और प्राथमिकताओं की बात है.

इस किताब की एक बड़ी ताक़त महिलाओं के अनुभव हैं. शहरी महिलाएँ ख़ासकर मज़दूर और घरेलू कामगार महिलायें दोहरी असुरक्षा झेलती हैं. काम की अनिश्चितता और घर की अस्थिरता, दोनों एक साथ. फिर भी वही महिलाएँ परिवार को जोड़कर रखती हैं, बच्चों की पढ़ाई पर ज़ोर देती हैं और रोज़मर्रा के जोखिमों का हिसाब लगाती हैं. किताब उन्हें न तो देवी बनाती है, न बेबस पीड़ित, बल्कि सोचने और निर्णय लेने वाली इंसान के रूप में रखती है.

ये किताब अंततः शहर को एक नैतिक सवाल में बदल देती है. शहर केवल इमारतों और योजनाओं का जोड़ नहीं है. वह यह तय करता है कि कौन सम्मान के साथ जिएगा और कौन हमेशा अस्थायी बना रहेगा. पश्चिमी देशों में शहर इसलिए बेहतर बने क्योंकि नीतियाँ सबसे कमजोर नागरिक को ध्यान में रखकर बनीं. भारत में शहर अक्सर ताक़तवरों की सुविधा से आकार लेते हैं.

यह किताब हिंदी के पाठक को यह समझने में मदद करती है कि बड़े सिद्धांत केवल किताबों में नहीं होते, वे रोज़मर्रा की ज़िंदगी में चलते हैं. और शहर को सबसे बेहतर वही लोग समझते हैं, जो उसे हर दिन अपने श्रम से बनाते हैं, भले ही शहर उन्हें अपना न माने.

यात्रा वृतांत

चार पहिए, चार लोग और चार्ली

प्रकृति की गोद में लिखीं यादें

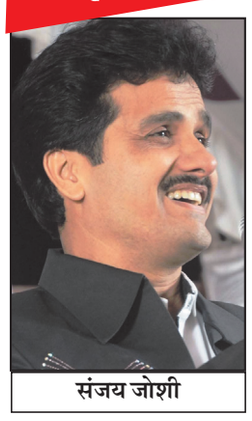

संजय जोशी

मैं, पत्नी, बेटी, बेटा और हमारा प्यारा डॉग (लेब्राडोर) चार्ली . हम सब जैसे हवा, बर्फ और पहाड़ों के बुलावे पर चल पड़े थे एक अनजानी दुनिया के सफ़र पर .

दो दिन पहले प्लान बना फिर सुबह जल्दी निकले और दिल्ली होते हुए सोनीपत में रात्रि विश्राम किया . लंबा और थकाने वाला सफर था . सोनीपत से चंडीगढ़ तथा फिर मनाली को बायपास करते हुए स्वर्ग में प्रवेश . अटल टनल में प्रवेश करना ऐसा था जैसे किसी और ही दुनिया के द्वार में कदम रख दिया हो . सुरंग के भीतर हल्की रोशनी और कार में धीमे बजते पुराने गीत %पुकारता चला हूँ मै%...उस पल को और भी गहरा बना रहे थे . सुरंग के पार निकलते ही दुनिया बदल गई, शीशों पर बर्फ के महीन कण, रास्तों के किनारों पर सफेद चादर, और दूर तक खड़े नीले-खामोश पहाड़ . उस समय चार्ली की आँखों में चमक थी, वह कार की खिड़की से बाहर झुककर हवा को महसूस कर रहा था जैसे कोई बच्चा पहली बार खेल के मैदान में उतरा हो .

जिस्पा की तरफ रास्ता कभी नरम, कभी बेहद कठिन . पहाड़ों की ढलान पर कार चलाना किसी मंत्र की तरह होता है, ध्यान पूरी तरह वहीं टिक जाता है . बेटी की खींची तस्वीरों में यह साफ दिखाई देता है कि प्रकृति का सौंदर्य कहीं भी ठहरने नहीं देता, बस मन को बहा ले जाता है . बेटी खुद आगे देखने में माहिर . वह दूर पहाड़ों की चोटियों की तरफ इशारा कर हमें बताती रहती, वो रास्ता अच्छा है, वहाँ से व्यू शानदार आएगा . बेटा बार-बार संगीत की प्लेलिस्ट बदलता रहता था

. सड़क किनारे कही अच्छी जगह और धूप मिल जाए तो रुक जाने से थोड़ा विश्राम भी होता था और हम सब मिलकर टिफिन पार्टी का आनंद लेते . खाने का स्वाद बर्फीली हवा के साथ एक याद बन जाता है . चार्ली बर्फ में उछलता-कूदता, मस्ती करता दूर तक निकल जाता और फिर दौड़ कर वापिस आता . उसे गाड़ी में बैठने की बजाय खेलने में ज़्यादा ही आनंद मिलता था .

बड़ा ही लंबा और कठिन रास्ता था इसे ही महसूस करने हर साल हजारों बाइकर्स इस यात्रा पर निकल पड़ते है . तो हम भी निकल पड़े हैं उस आनंद और रोमांच के अनुभव के लिए .

रास्ते में कहीं-कहीं कोहरा इतना गहरा हो जाता कि सामने की सड़क धुँधली सी दिखाई देती . ऐसे में मैं कार बहुत धीरे चलाता, और पत्नी मेरी बगल में बिल्कुल चुप, लेकिन जागी हुई, मेरी हर साँस के साथ . रात को हम वाहन नहीं चलाते थे, लेकिन अगर कभी ऐसा होता भी कि थोड़ी दूरी तय करनी पड़े, तो पत्नी की आँखों में कितनी ही नींद क्यों न हो , वह कभी नहीं सोती . वह मानो मेरी आँखों के लिए आँख बन जाती .

ऊँचाई बढ़ने लगी और ठंड तेज़ होती गई . कभी-कभी सिर हल्का चकराता, माउंटेन सिकनेस से शरीर बताता था कि ऑक्सीजन कुछ कम है . ऐसे में हम कार रोककर गहरी साँसें लेते, थोड़ा टहलते, अनुलोम-विलोम प्राणायाम करते, पानी पीते और गरम चाय का थर्मस खोल लेते . बेटा-बेटी दोनों समझते थे कि यह सफर सिर्फ मज़ेदार नहीं, समझ और संतुलन माँगने वाला है . वे रास्तों पर नज़र रखते, दूरी और मोड़ों की सूचना देते, और जरूरत पड़ने पर सामान भी संभालते . एक परिवार जो सिर्फ एक साथ नहीं होता, बल्कि एक-दूसरे का सहारा बन जाता है .

बड़ा ही रोमांचक और सुंदर रास्ता था - मनाली - अटल सुरंग - सिस्सू - केलोंग - जिस्पा - बारालाचा दर्रा - सरचू - पांग - टैगलांग ला दर्रा - लेह- पत्थर साहिब गुरुद्वारा - मैग्नेटिक हिल - लेह - खारदुंगला दर्रा - नुब्रा घाटी - श्योक - दुरबुक - पैंगोंग झील .

रास्ते में सफेद रेत वाला सुंदर स्थान मिला था वहाँ डबल हम्प वाले ऊँटों की सवारी करते हुए ऐसा लगा मानो हम किसी दूसरी समयरेखा में हों . सफेद रेत के विशाल मैदान, चारों ओर निर्जन, पथरीले, रहस्यमय पहाड़ . गुरुद्वारा पत्थर साहिब में लंगर की गर्म दाल और रोटी ने शरीर ही नहीं, मन को भी गरमाहट दी .

रास्ते में जहाँ भी सुंदर, सुरक्षित जगह मिलती, मैं कार साइड लगाकर सीट पीछे कर थोड़ी देर की झपकी (पावर नेप) ले लेता था . जबकि अन्य सदस्य बाहर निकल कर थोड़ा घूम लेते, फोटोग्राफी कर लेते . पाँच मिनट की वह झपकी जैसे पूरे शरीर को फिर जीवित कर देती . कभी-कभी चार्ली भी मेरे पैरों पर सिर रख देता था, मानो कह रहा हो -चिंता मत करो, मैं हूँ .

इस कठिन किंतु रोमांचक और यादगार रास्ते को पार कर पैंगोंग लेक पर पहुँचना जैसे सपने में प्रवेश करना था . आकाश का नीला रंग पानी में घुल गया था . हवा की ठंड सीधी हड्डियों तक उतरती, पर दिल गर्म था . चार्ली किनारे दौड़ रहा था, अचानक वह उस बर्फीली झील में कूद गया . हम बहुत डर गए, उसे टॉवेल से पोछकर गाड़ी में बैठाया . बेटीअपने कैमरे से हर पल को रोक रही थी, और बेटा हर पल को अपनी आंखों में बसा रहा था . हमने लेक के ठीक सामने ही एक टेंट लिया था . वहाँ की रातज्तारों की रोशनी में झील सोती हुई लगती थी . हवा की आवाज़ ही संगीत थी . चांदनी रात और लेक के रंगो की पानी पर अठखेलियाँ आलौकिक आनंद से मन को अभिभूत कर रही थी . वाकई सच में सुंदर है पेंगोंग लेक . सुबह, दोपहर, शाम, रात का नजारा अलग अलग और रंगों का इंद्रधनुष भी अलग .

कैम्पफ़ायर की रातें हमेशा हमारी यात्रा की धड़कन रहीं . जलती हुई लकड़ियों की महक, हवा में तैरती राख, चार्ली का आग के पास अपने पंजे फैलाकर लेटना जैसे हम सब किसी कहानी में थे और कहानी हममें .

वापसी जब शुरू हुई, हम थोड़ा थके थे, लेकिन संतुष्ट, जैसे कोई जीवन को थोड़ा और समझकर लौटा हो .प्रकृति ने हममें बहुत कुछ डाला जैसे धैर्य, प्रेम, साहस, आनंद, और वह चुप शांति जो सिर्फ पहाड़ देते हैं .

गीत

वसंत पंचमी

प्रोफेसर प्रज्ञा मिश्रा
संस्कृत विभाग ,म.गाँ .चि.ग्रा.
चित्रकूट (म.प्र.)

वसंत पंचमी सुन्दर है,
खुशियों का ये समन्दर है।
सरसों पीली खिलती है,
फूल पलाशी दिखती है।
नीली चादर बादल की,
सूरज लाली पूरब की।।
वसंत पंचमी सुन्दर है,
खुशियों का ये समन्दर है।
चाँद चमकता दिखता है,
साजन आँगन सजता है।
गोरी गोरी लगती है,
सरसों से सम दिखती है।।
वसंत पंचमी सुन्दर है,
खुशियों का ये समन्दर है।
वासंती रंग रलियों में,
प्रियतम की इन गलियों में।
मधुकर मुझको मचलाना,
सिंदूरी सा कर जाना।।
वसंत पंचमी सुन्दर है,
खुशियों का ये समन्दर है।
साजन राग सुना मुझको,
श्याम ! रंग, रंग दे मुझको।
धानी चादर में हम दो,
एक हुये थे तन मन से।।
वसंत पंचमी सुन्दर है,
खुशियों का ये समन्दर है।
भूल जो होयेगी मुझसे,
तुम ही खींचोगे उससे।
परमारथ के काम आयेंगे,
कर्मयोग कर जायेंगे।।
वसंत पंचमी सुन्दर है,
खुशियों का ये समन्दर है।

संपादकीय बोर्ड प्रबंध संपादक : सुमीत माहेश्वरी , समूह संपादक : क्रांति चतुर्वेदी